P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-6* ISSUE-9*(Part-1) May- 2019
E: ISSN NO.: 2349-980X **Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika**

प्राचीन भारत में व्यापार और वाणिज्य (200 ई0पू से 300 ई0 तक)

प्रज्ञा मिश्रा
असिस्टेंट प्रोफेसर,
इतिहास विभाग,
दीनदयाल उपाध्याय राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
सैदाबाद, प्रयागराज,
उत्तर प्रदेश, भारत

सारांश

प्राचीन भारतीय इतिहास में द्वितीय शताब्दी ई0पू0 से लेकर तृतीय शताब्दी ई0 तक का कालखण्ड अनेक दृष्टियों से महत्वपूर्ण दिखाई पड़ता है। इसी कालखण्ड में उत्तरभारत में हिन्द–यवन, शक–पह्लव और कुषाण बारी–बारी से आए और उन्होंने पश्चिमोत्तर भारत के बड़े भू–भाग पर अपनी सत्ता स्थापित की।[1] इस सन्दर्भ में यह उल्लेखनीय है कि कुषाणों का साम्राज्य एक समय मध्य एशिया से लेकर बिहार–बंगाल की सीमा तक विस्तृत था। शकों के कई कबीलों ने पश्चिमोत्तर भारत में अपनी सत्ता स्थापित की। पश्चिम भारत के क्षहरात तथा कार्दमक शकों विशेषकर कार्दमक शकों ने इस क्षेत्र में विशिष्ट भूमिका निभाई। उन्होंने न केवल अपने क्षेत्र की तत्कालीन राजनीति को प्रभावित किया, अपितु वहाँ के सांस्कृतिक और आर्थिक जीवन में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।[2] दक्षिण भारत के संदर्भ में संदर्भित युग सातवाहनों और संगम युग में वर्णित राजवंशों–चोल, पाण्ड्य और चेर के राजनीतिक उन्मेष का युग था।

प्रारम्भिक बौद्ध काल से ही व्यापार एवं वाणिज्य का विकास हो गया था। लेकिन ये तब अपनी शैशवा स्थिति में थे। ईसवी सन् की प्रारम्भिक शताब्दियों में व्यापारियों एवं शिल्पियों की श्रेणियों का अत्यधिक विकास हो गया था। परिणामस्वरूप व्यापारिक क्षेत्र में भी अभूतपूर्व उन्नति हुई।

मुख्य शब्द : व्यापार–वाणिज्य, श्रेणि, कुषाण, सिक्के।

प्रस्तावना

इस काल की महत्वपूर्ण देन टकसाल कला का विकास होना है। संदर्भित युग की एक बड़ी विशेषता यह थी कि बड़े पैमाने पर सिक्कों का प्रयोग हो रहा था। इस संदर्भ में यह उल्लेखनीय है कि भारत में सिक्कों का प्रचलन वैसे तो छठीं शताब्दी ई0पू0 के उत्तरार्द्ध से आरम्भ हो गया था। ताँबे के लेखरहित ढलुए सिक्के तथा सामान्यतया चाँदी के बने आहत सिक्के भारत के विभिन्न क्षेत्रों से उत्खनन के समय प्राप्त हुए है। कही–कहीं ये ढेरों के रूप में भी प्राप्त हुए हैं। लेकिन विवेच्य युग में मुद्रा के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण परिवर्तन दिखाई पड़ता है। अब सिक्कों का आकार–प्रकार सुडौल हो गया है, उन पर राजा और विरूद्ध का उल्लेख पुरोभाग पर दिखाई पड़ता है, तथा पृष्ठ भाग पर किसी देवी–देवता का अंकन रहता है। प्राचीन भारतीय इतिहास में हिन्द –यवन शासकों ने जिस प्रकार के सिक्कों के प्रचलन का श्रीगणेश किया वह नियत गति से आगे चलता रहा।[3] कुषाण युगीन सिक्कें पर रोमन सिक्कों का प्रभाव दिखाई पड़ता है, इस संदर्भ में दीनार विशेष रूप से उल्लेखनीय है।[4] भारत में स्वर्ण मुद्राओं का प्रचलन कुषाणों से आरम्भ होता है। कुषाणों से पूर्व ईरानी सम्राट डेरियस ने सोने के सिक्के 'डेरिक' तथा चाँदी के 'सिगलाय' का प्रचलन किया था। लेकिन ये सिक्के पश्चिमोत्तर भारत सीमित क्षेत्र, जहाँ ईरानी आधिपत्य स्थपित था, वही तक सीमित थे।

गुप्त युग में भी सोने के सिक्कों के लिए दीनार शब्द का प्रयोग दिखाई पड़ता है। देशी शासकों (राजतंत्रात्मक व गणराज्य) ने भी सिक्के चलाए। इस संदर्भ में पांचाल[5], मथुरा[6], अयोध्या[7] कौशाम्बी[8], मद्य[9] आदि के सिक्कों के साथ–साथ यौधेय[10], आर्जुनायन[11], कुणिन्द[12] आदि के सिक्कों का उल्लेख किया जा सकता है। पश्चिम भारत में शक–क्षहरात व कार्दमकों[13] के सिक्कें मिलते ही है तो दूसरी तरफ दक्कन के क्षेत्र में सातवाहनों[14] के सिक्के भी बड़ी संख्या में प्राप्त होते हैं। सिक्कों के प्रचलन ने व्यापार और वाणिज्य के क्षेत्र में एक नये युग का सूत्रपात किया। यद्यपि वस्तु–विनिमय अब भी प्रचलन में था, लेकिन वस्तुओं के क्रय–विक्रय में सिक्कों के महत्व को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है।

इस युग से सम्बन्धित साक्ष्य चाहे उत्तर–भारत से जुड़े हो अथवा दक्षिण–भारत से, व्यापार वाणिज्य के क्षेत्र में महत्वपूर्ण आर्थिक गतिविधियों की सूचना देते है। यद्यपि इस युग में राज्यों में आपसी संघर्ष था, लेकिन तब भी व्यापार–वाणिज्य में विकास दिखाई पड़ता है। हिन्द–यवन यद्यपि भारत में बैक्ट्रिया से आऐ लेकिन उनके अन्दर यवन होने का बोध दिखाई पड़ता है। इस तरह उनके तार पश्चिम एशिया से जुड़े दिखाई पड़ते है। शक मध्य एशिया से आए तो कुषाण चीन के कान्शु प्रांत से। फलस्वरूप इन सत्ताओं की स्थापना से भारत और पश्चिम एशिया व मध्य एशिया पहले की तुलना में एक–दूसरे के नजदीक आए। भारत के विभिन्न क्षेत्रों में इस युग में राज्यों की स्थापना के साक्ष्य मिलते हैं। मौर्य सत्ता के चिता–भस्म पर एक तरफ शुंग और कण्व आए तो दूसरी तरफ अन्य क्षेत्रीय शक्तियों के अर्विभाव के भी दर्शन होते हैं।

रोमन सत्ता की पूर्णरूप से स्थापना और अलेक्जेन्ड्रिया पर उसके आधिपत्य के बाद निश्चय ही रोमन जगत से भारत के व्यापारिक सम्बन्धों मे वृद्धि हुई। इस बात की पुष्टि न केवल यूनानी–रोमन लेखकों अपितु पुरातात्विक साक्ष्यों से भी होती है। दक्षिण भारत के अनेक स्थलों से रोमन शासकों के सिक्के (विशेषकर आगस्टस से टाइबेरियस के समय तक के) बड़ी संख्या में उपलब्ध हुए हैं। ये सिक्के मुख्य रूप से सोने व चाँदी के है। इस संदर्भ में यह उल्लेखनीय है कि तत्कालीन दक्षिण भारत सोने के सिक्कों से परिचित नहीं था। स्वाभाविक है कि वह रोमन स्वर्ण सिक्कों को स्वर्ण–पिण्डों के रूप में ग्रहण कर रहा था। अरिकामेडु[15] के उत्खनन से भी दक्षिण भारत और रोमन जगत के बीच व्यापारिक सम्बन्धों की पुष्टि होती है। संगम साहित्य में इस तथ्य का उल्लेख मिलता है कि यवन व्यापारी अपने बड़े–बड़े जहाजों के साथ दक्षिण भारत के बन्दरगाहों पर आते थे।[16] प्राप्त साक्ष्यों से पता चलता है कि भारत–रोमन व्यापार में भारत लाभ की स्थिति में था। शायद तभी प्लिनी इस बात का उल्लेख करता है कि विलासिता की वस्तुओं के बदले रोम को प्रतिवर्ष अपना बहुमूल्य सोना और चाँदी भारत को दिया जाता है। यूनानी–रोमन साहित्य में भी इस सम्पर्क के फलस्वरूप अब भारत के संदर्भ में पहले की तुलना में अधिक और विश्वसनीय सूचनाएं मिलती है। इस प्रकार के ग्रन्थों में डियोडोरस की लाइब्रेरी ऑफ हिस्ट्री, स्ट्रैबों की जियोग्राफी, एरियन की इंडिका, प्लिनी की नेचुरल हिस्ट्री, किसी अज्ञात लेखक का पेरिप्लस तथा टालमी की जियोग्राफी विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

तत्कालीन व्यापार–वाणिज्य में श्रेणियों की महत्वपूर्ण भूमिका थी।[17] ये व्यापारियों और दस्तकारों के संगठन के रूप में भी उन्होंने उत्पादन को बढ़ावा दिया। इतना ही नहीं इसने तत्कालीन नागर जीवन में भी महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। इस युग में आर्थिक क्रियाकलापों की संख्या में वृद्धि दिखाई पड़ती है। मिलिन्दपन्हों और महावस्तु जैसे ग्रंथ 75 या उससे अधिक पेशों का उल्लेख करते है। स्वाभाविक है कि ये सभी श्रेणियों के रूप में संगठित नहीं रहे होगें। लेकिन ये शिल्पी और कारीगर जिनके उत्पादों की मांग अधिक रही होगी, निश्चय ही श्रेणियों में संगठित रहे होगें। इस युग के प्रमुख शिल्पियों और कारीगरों में कुम्भकार, धातुकर्मी, बुनकर हाथी दाँत पर कार्य करने वाले, बढ़ई आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इन श्रेणियों के अपने नियम उपनियम थे, जिन्हें श्रेणिधर्म के नाम से जाना जाता था। राजाओं से यह अपेक्षा की जाती थी कि वे श्रेणियों के नियमों का सम्मान करें। श्रेणियों के अध्यक्ष को ज्येष्ठक या श्रेणी प्रमुख के नामों से जाना जाता था। श्रेणियों को अपनी सुरक्षा के लिए, विशेषकर यात्रा के समय, सैनिकों की भी आवश्यकता होती थी, जिसे श्रेणिबल के रूप में जाना जाता था। दूरस्थ व्यापार के सिलसिले में सार्थवाह का उल्लेख मिलता है। प्राप्त साक्ष्यों से पता चलता है कि श्रेणियों बैंक का भी काम करती थी। लोग उसमें धन जमा करते थे। इस संदर्भ में शक–संवत् 42 का उषवदात का अभिलेख उल्लेखनीय है, जिसमें गोवर्धन की श्रेणी मे धन जमा करने की बात कही गयी है।[18] इस तरह के उद्धरणों से ज्ञात होता है कि तत्कालीन राजनीति में श्रेणियों का कितना महत्व था। ये श्रेणियाँ तरह–तरह के धार्मिक और सामाजिक कार्यों से जुड़ी दिखाई पड़ती है। भरहुत, सांची आदि के निर्माण में इनकी महत्वपूर्ण भूमिका के संकेत मिलते हैं।

भारत और रोमन जगत के बीच जिस सघन व्यापार की सूचना संदर्भित युग में दिखाई पड़ती है। संम्भव है कि रोमन साम्राज्य के स्थायित्व के साथ–साथ हिप्पालस द्वारा मानसून की खोज थी। जिसके फलस्वरूप अब मालवाहक जहाज, समुद्र के किनारे–किनारे न चलकर सीधे समुद्र में चलने लगे थे। इससे न केवल दूरी कम हुई अपितु जल दस्युओं का खतरा भी कम हो गया। प्राप्त साक्ष्यों से पता चलता है कि भारत, रोमन जगत से सोना, चाँदी, मूंगा, शीशे की बनी वस्तुए और शराब का आयात कर रहा था तथा रोमन जगत को मणि माणिक्य, मोती, मलमल, रेशम, हाथी–दांते की बनी वस्तुएं और शराब का आयात, कछुए की खोपड़ी, गरम मसाले आदि का निर्यात करता था। इस संदर्भ में यह उल्लेखनीय है कि एक तरफ जहाँ रोमन साम्राज्य के सम्भ्रान्त वर्ग में विलासिता की वस्तुओं की मांग बढ़ रही थी। वही पर भारत के सम्भ्रान्त वर्ग में रोमन मदिरा लोकप्रिय हो रही थी। अरिकमेडु के उत्खनन से पता चलता है कि बड़े–बड़े पात्रों में शराब भारत आती थी।

इस व्यापार–वाणिज्य का प्रभाव तत्कालीन सांस्कृतिक जीवन में भी परिलक्षित होता है। गांधार कला के प्रस्फुरण को इसी पृष्ठभूमि में रखने की आवश्यकता महसूस होती है। कुषाण युग में ही सर्वप्रथम गौतम बुद्ध की मानुषी प्रतिमाएं बनने लगी। मथुरा और गान्धार प्रमुख कला केन्द्र के रूप में अस्तित्व में आए। जहाँ मथुरा की कला शैली पर पहले की स्थानीय कला शैली का प्रभाव दिखाई पड़ता है। वहीं पर गांधार कला शैली पर यूनानी–रोमन प्रभाव स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। गांधार कला के संदर्भ में यह बात कही जा सकती है कि उस कलाकार के हाथ विदेशी थे लेकिन हृदय भारतीय था। इस कला शैली में बुद्ध और बोधिसत्व की जो प्रतिमाएँ बनी उसके ऊपर यूनानी रोमन कला का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है।

पश्चिमी जगत और मध्य एशिया से भारत के बढ़े सम्बन्धों के परिप्रेक्ष्य मे भारतीयों के दृष्टिकोण में व्यापकता परिलक्षित होती है। यदि ऐसा न रहा होता तो यूनानी मूल के होलियोडोरस का परमभागवत बनना सरल न होता। हिन्द–यवन शासक मिनेन्डर बौद्ध था। इस बात की सूचना मिनेन्डर के अभिलेखों और प्रसिद्ध बौद्ध ग्रन्थ मिलिन्दपन्ह से मिलती है। कुषाण शासक कुजुलकडफिसिस का झुकाव बौद्ध धर्म की ओर था विम कडफिस का शैव धर्म की ओर। यद्यपि कनिष्क प्रथम के सिक्कों पर कई तरह के देवी–देवताओं के चित्रण मिलते हैं, लेकिन बौद्ध परम्परा में उन्हें समाहित कर लिया गया। धार्मिक चिन्तन की इस उदार प्रवृत्ति के फलस्वरूप बौद्ध धर्म को एक नया रूप देने का प्रयास किया गया और महायान सम्प्रदाय का उदय हुआ। कनिष्क के संरक्षण में बौद्ध धर्म का प्रचार–प्रसार एशिया आदि देशों में हुआ। बौद्ध भिक्षुओं और व्यापारियों के माध्यम गांधार कला का प्रसार हुआ। बामियान की पहाड़ियों को तराशकर बनाई गयी बुद्ध की विशालकाय प्रतिमाएं इसका उदाहरण है।

उत्तर भारत के इतिहास में संदर्भित युग, विशेषकर कुषाण युग एक नई आर्थिक चेतना को जन्म देता दिखाई पड़ता है। इस युग में जनसंख्या बढ़ी, नागर संस्कृति लोकप्रिय होने लगी और कुषाण सिक्के प्रचुर संख्या में अपेक्षाकृत बड़े भूमि में प्रचलित हुए। इस संदर्भ में यह उल्लेखनीय है कि उत्तरी–काली ओपदार पात्र–परम्परा का युग और कुषाण युग ऐसे है जिसमें जनसंख्या में वृद्धि दिखाई पड़ती है। कुषाण युग में भवनों की संरचना में पकी ईंटों के व्यापक प्रयोग की भी सूचना मिलती है। कुषाण युग के धरातल से प्राप्त होने वाले साक्ष्य एक समृद्ध युग की सूचना देते है।

अध्ययन की आवश्यकता

व्यक्ति का लौकिक और भौतिक सुख उसके आर्थिक विकास पर निर्भर करता है। राज्य की समृद्धि और स्थायित्व उसकी आर्थिक स्थिति की सुदृढ़ता पर निर्भर करता है उपर्युक्त विषय के अध्ययन से प्राचीन भारत (200 ई0पू0 –300 ई0 तक) के इस महत्वपूर्ण कालखण्ड में जिसमें हिन्द–यवन, शक–पहलव और कुषाणों आदि ने भारत में अपनी सत्ता स्थायित्व की। उनकी व्यापारिक गतिविधियों मौद्रिक अर्थव्यवस्था के विकास एवं विस्तार, श्रेणियों के संगठन सम्बन्धी विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डालने हेतु इस विषय का अध्ययन अति आवश्यक प्रतीत होता है।

अध्ययन का उद्देश्य

200 ई0पू0 से 300 ई0 के मध्य भारत में व्यापार एवं वाणिज्य से सम्बन्धित गतिविधियों का एक विशिष्ट उत्कर्ष हुआ। इस काल में उद्योग–धन्धों में प्रगति, आन्तरिक एवं बाह्य व्यापार में वृद्धि एवं सिक्कों के विस्तृत प्रचलन की स्थिति में नगरों का भी विकास हुआ। श्रेणियों के संगठन एवं उनकी शक्ति में भी वृद्धि हुई। प्रस्तुत शोध पत्र का उद्देश्य प्राचीन भारत में व्यापार और वाणिज्य विषय के सभी महत्वपूर्ण बिन्दुओं को प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है जिससें उस कालखण्ड के व्यापार–वाणिज्य, श्रेणी संगठन, मौद्रिक व्यवस्था का क्रमबद्ध अध्ययन प्रस्तुत किया जा सके।

शोध विधि

प्रस्तुत शोध पत्र में अध्ययन विषय का ऐतिहासिक, अभिलेखिक, एवं विश्लेषणात्मक अध्ययन किया गया है तथा समीक्षा करते हुए निष्कर्ष दिया गया है।

निष्कर्ष

उपर्युक्त साक्ष्यों के आलोक में यह परिलक्षित होता है कि 200 ई0पू0 से लेकर 300 ई0 का कालखण्ड प्राचीन भारतीय इतिहास का वह युग था। जिसमें आंतरिक व्यापार के साथ–साथ बाह्य व्यावसाय की भी महत्वपूर्ण प्रगति हुई। नये–नये उद्योग–धन्धे स्थापित होने लगे। व्यापारी श्रेणियों में संगठित दिखाई देते है। श्रेणिधन, श्रेणीबल, श्रेष्ठिन, महाश्रेष्ठिन्, सार्थवाह–जैसे शब्द इस युग के साहित्य में अनेक स्थानों में मिलते है। श्रेणिया न केवल व्यापारिक गतिविधियों में अपितु तत्कालीन सांस्कृतिक क्रियाकलापों में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती दिखाई पड़ती है। इस युग के आर्थिक क्रिया कलापों ने जिस नई सांस्कृतिक चेतना को प्रोत्साहित किया था उससे बौद्ध, जैन, वैष्णव और शैव सभी धर्म प्रभावित हुए। यह वह युग था जिसने भरहुत और सांची के महान स्तूपों के स्वर्णिम विहान को देखा। इसी युग में अमरावती के विशाल स्तूप का निर्माण हुआ तथा गौतम बुद्ध की मानवाकार प्रतिमाओं के निर्माण का सूत्रपात हुआ।

अंत टिप्पणी

1. *रोमिला थापर "द राइज आफ मर्कन्टाइन कल्युनिटी," हिस्ट्री ऑफ इण्डिया I पृ0 109, रोमिला थापर, द पेनगुइन हिस्ट्री आफ अर्ली इण्डिया (फ्राम द ओरिजिन्स टु ए0 डी0 1300), पेनगुइन बुक्स इण्डिया (प्रा0) लिमिटेड, पंचशील पार्क, नई दिल्ली, 2002, पृ0 245।*
2. *रोमिला थापर, 2002, पूर्वोक्त, पृ0 252–53*
3. *जे0एन0 बनर्जी, क्वायनेज,' ए कम्प्रेहेन्सिव हिस्ट्री आफ इण्डिया, जिल्द II द मौर्याज एण्ड सातवाहनाज (325 ई0पू0 से ई0 300 तक) सम्पादक के0ए0 नीलकण्ड शास्त्री, पीपुल्स पब्लिसिंग हाउस, नई दिल्ली पृ0 781–95*
4. *पी0एल0 गुप्त द इम्पेरिअल गुप्ताज, जिल्द I विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 1974, पृ0 69*
5. *जगन्नाथ, 'पोस्ट मौर्यन डाइनेस्टीज' (184 ई0पू0 से ई0 200), कम्प्रहेनसिव हिस्ट्री आफ इण्डिया, जिल्द II द मौर्याज एण्ड सातवाहनाज 325 ई0पू0 से 300ई0, सम्पादक, के0ए0 नीलकण्ठ शास्त्री, पूर्वोक्त, पृ0 106–107*
6. *वही, पृ0 108*
7. *वही, पृ0 105–106*
8. *वही, पृ0 107–108*
9. *जे0 एन0 बनर्जी तथा जगन्नाथ, 'द राइज एण्ड फाल आफ कुषाण पावर' कम्प्रेहेन्सिव हिस्ट्री आफ इण्डिया, जिल्द II पूर्वोकत, पृ0 259–262।*
10. *जगन्नाथ, 'पोस्ट मौर्यन डाइनेस्टीज' कम्प्रेहेन्सिव हिस्ट्री आफ इण्डिया, जिल्द II सम्पादक, के0ए0 नीलकण्ठ शास्त्री, पूर्वोक्त, पृ0 110–111 तथा जे0*

एन0 बनर्जी एण्ड जगन्नाथ, कम्प्रेहेन्सिव हिस्ट्री आफ इण्डिया, जिल्द II पूर्वोक्त, पृ0 255–256।

11. D.C. Sricar, 'नादर्न इण्डिया आफ्टर द कुषाणाज,' एज आफ़ इम्पेरियल युनिटी सम्पादक, आर0 सी0 मजूमदार तथा ए0डी0 पुसालकर भारतीय विद्या भवन प्रकाशन, बाम्बे, 1953, पृ0–162–163
12. जगन्नाथ, पूर्वोक्त, पृ0–110
13. जे0एन0 बनर्जी, 'क्वायनेज', कम्प्रेहेन्सिव हिस्ट्री आफ इण्डिया, जिल्द II सम्पादक, के0ए0 नीलकण्ठ शास्त्री, पूर्वोक्त, पृ0 807–9
14. वही, पृ0 804–806
15. व्हीलर, आर0ई0एम0 आदि 'अरिकामेडु' : एन इण्डो–रोमन ट्रेडिंग स्टेशन इन 'द ईस्ट कोस्ट आफ इण्डिया,' एन्सिएण्ट इण्डिया, 2 1946 पृ0 17–124।
16. के0ए0 नीलकण्ठ शास्त्री, दक्षिण भारत का इतिहास (अनु0 वीरेन्द्र वर्मा तथा विष्णु अनुग्रह नारायण, बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पटना, 1972, पृ0 138–141।
17. रोमिला थापर, पेनगुइन हिस्ट्री आफ अर्ली इण्डिया, पूर्वोक्त, पृ0 248–257।
18. ई0 सेनार्ट, नासिक केव इन्सक्रिप्सन्स, इन्सक्रिप्सन सं0 12, एपिग्राफिया इण्डिया, जिल्द सात, पृ0–82।